ISSN 2277-1530

सरस्वतीसौरभम्

संस्कृत-हिन्दी तथा अहिन्दीभाषी क्षेत्रों के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विचारों की शोध पत्रिका

वर्ष - 6 सितम्बर - 2017 संयुक्ताङ्कः - चतुर्दशः

प्रकाशक

सरस्वतीप्राच्यविद्याशोधप्रतिष्ठान

(संस्थापक-स्व. पं. गङ्गासहाय जोशी)

सौजन्य

जे एस पी पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स

(यूनिट - जगदीश संस्कृत पुस्तकालय)

अग्रवाल प्रेस भवन, दुकान नं. - 372 के पास वाली गली, चौडा रास्ता, जयपुर

रसगंगाधर में रस के उदाहरणों में छन्दो-विमर्श

प्रो. अर्चना दुबे

शृंगार रस - संयोग शृंगार

शयिता सविधेऽप्यनीश्वरा सफलीकर्तुमहो मनोरथान्।
दयिता दयिताननाम्बुजं दरमीलन्नयना निरीक्षते।।[1]

प्रस्तुत पद्य में शृंगार रस है। नायक आलम्बन, रहस्यस्थानादय उद्दीपन, मुखनिरीक्षण अनुभाव, औत्सुक्य व्यभिचारी भाव एवं रति स्थायी भाव है।

प्रस्तुत पद्य काव्यभेद (उत्तमोत्तम) में भी आया है।

छन्दो-विमर्श - विषम चरणों में प्रथम छः मात्राओं के बाद रगण, एक लघु और गुरु एवं सम चरणों में प्रथम आठ मात्राओं के बाद रगण, एक लघु और एक गुरु होने से वैतालीय छन्द है।[2]

विप्रलम्भ शृंगार -

वाचो मांगलिकीः प्रयाणसमये जल्पत्यनल्पं जने
केलीमन्दिरमारुतायनमुखे विन्यस्तवक्त्राम्बुजा।
निश्छासग्लपिताधरोपरिपतद्बाष्पार्द्रवक्षोरुहा
बाला लोलविलोचना शिव! शिव!! प्राणेशमालोकते।।[3]

अर्थ - पतिदेव परदेश के लिए यात्रा कर रहे हैं शुभचिन्तक लोग जोर-जोर से मांगलिक वचनों को बोल रहे हैं परन्तु वह बाला रतिमन्दिर के वातायनों में मुख-कमल को डालकर बैठी है उसके श्वास प्रबल वेग से चल रहे हैं जिससे उसके अधर शुष्क होकर म्लान हो चुके हैं और उन अधरों पर गिरकर नीचे की ओर प्रवाहित होने वाली अश्रु-धारा से उसके उरोज भीग गये हैं शिव! शिव इस दुर्दशा में पड़ी हुई वह चंचल नेत्रों से अपने प्राणेश्वर को देख रही है।

यहाँ नायक रूप आलम्बन, निश्वास, अश्रुपातादि रूप अनुभाव और विषाद, चिन्ता, आवेग आदि व्यभिचारी भाव के संयोग से नायिका की रति अभिव्यक्त होती है।

छन्दो-विमर्श - प्रस्तुत पद्य के प्रत्येक चरण में मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण और एक गुरु तथा बारह (ये) और सात (ने) पर यति होने से शार्दूलविक्रीडित छन्द है। इसमें उन्नीस वर्ण होते हैं।

शार्दूलविक्रीडित छन्द का लक्षण इस प्रकार है-

Scanned with CamScanner

छन्दःशास्त्रम् के अनुसार -

शार्दूलविक्रीडितं म्सौ ज्सौ तौ गादित्यऋषयः।[4]

सुवृत्ततिलकम् के अनुसार -

मसजैः सततैगन युक्तमेको नविंशवत्।
शार्दूलक्रीडितं प्राहुश्छिन्नं द्वादशसप्तभिः।।[5]

वृत्तरत्नाकर के अनुसार -

सूर्वाश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।[6]

छन्दोमंजरी के अनुसार -

सूर्यास्वर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।[7]

संस्कृत साहित्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द बहुत ही प्रसिद्ध है जहाँ लड़ाई का वर्णन करना होता है किसी
ा आदमी में आशा का संचार करना होता है जहाँ समासगर्भा समसित पदावली अभीष्ट होती है वहाँ पर
गण इसी छन्द का प्रायः प्रयोग करते हैं।

कहा जाता है कि शार्दूलविक्रीडित के पूर्वार्द्ध में यदि पद अलग-अलग रहते हैं अर्थात् पदावली
सरहित होती है तथा उत्तरार्ध में समास-युक्त पद होते हैं तब यह छन्द अत्यन्त सुन्दर लगता है-

विच्छिन्नपादं पूर्वार्द्धे द्वितीयार्धे समासवत्।
शार्दूलविक्रीडितं भाति विपरीतमतोऽधमम्।।[8]

पं. जगन्नाथ ने इसी वैशिष्ट्य से युक्त शार्दूलविक्रीडित छन्द की रचना की है। प्रस्तुत पद्य के पूर्वार्द्ध में पद
ग-अलग है तथा उत्तरार्ध में समास से युक्त पद होने से शार्दूलविक्रीडित छन्द एक अपूर्व ही शोभा को धारण
रहा है।

आविर्भूता यदवधि मधुस्यन्दिनी नन्दसूनोः
कान्तिः काचिन्निखिलनयनाकर्षणे कार्मणज्ञा।
श्वासो दीर्घस्तदवधि मुखे पाण्डिमा गण्डयुग्मे
शून्या वृत्तिः कुलमृगदृशां चेतसि प्रादुरासीत्।।[9]

अर्थ - जब से मधु-वृष्टि करने वाली और जीवमात्र के नेत्रों को आकृष्ट करने का जादू जानने वाली
तनय कृष्णचन्द्र की अनिर्वचनीय देह-द्युति संसार में प्रकट हुई, तभी से कुलांगनाओं के मुख में दीर्घ श्वास,
ाल-युगल में श्वेतता तथा चित्त में शून्यवृत्ति प्रादुर्भूत हो गई हैं।

यहाँ कृष्णचन्द्ररूप आलम्बन श्वास आदि अनुभाव, व्यंगय विषाद आदि व्यभिचारी भाव के संयोग से
ाकामिनीनिष्ठ, वियोगकालिका रति भाव की पुष्टि होकर विप्रलम्भ शृंगार रस निष्पन्न हो रहा है।

छन्दो-विमर्श - प्रस्तुत पद्य में मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और दो गुरु एवं चतुर्थ षष्ठ व सप्तम वर्ण
ाति होने से मन्दाक्रान्ता छन्द है इसमें कुल सत्रह वर्ण होते हैं।

Scanned with CamScanner

विभिन्न आचार्यों के अनुसार मन्दाक्रान्ता का लक्षण इस प्रकार से है-

छन्दःशास्त्रम् के अनुसार

मन्दाक्रान्ता म्भौ नतौ तगौ ग् समुद्रर्तुस्वराः।[10]

सुवृत्ततिलकम् के अनुसार

चतुः षट्सप्तविरति वृत्तं सप्तदशाक्षरम्।
मन्दाक्रान्ता मभनतैस्तगगैश्चाभिधीयते।।[11]

वृत्तरत्नाकर के अनुसार

मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद् गुरू चेत्।।[12]

छन्दोमंजरी के अनुसार

मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौं गयुग्मम्।।[13]

मन्दाक्रान्ता छन्द भी संस्कृत कवियों का प्रिय छन्द रहा है। अनेक संस्कृत कवियों ने इस छन्द का प्रचुरता से व्यवहार किया है। मन्दाक्रान्ता की सुन्दरता के विषय में क्षेमेन्द्र ने लिखा है-

मन्थराक्रान्तविश्रब्धैश्चतुर्भिः प्रथमाक्षरैः।
मध्यषट्केऽतिचतुरे मन्दाक्रान्ता विराजते।।[14]

इस छन्द के नाम (मन्द + आक्रान्ता) का अर्थ धीमी गति वाला है इसलिए इसके प्रत्येक चरण में तीन बार और सम्पूर्ण छन्द में बारह बार रुक रुककर उच्चारण करना होता है।

पं. जगन्नाथ के द्वारा प्रयुक्त मन्दाक्रान्ता सर्वथा इसके अनुकूल है। इस पद्य में आदिम चार वर्णों की गति मन्द तथा उसके बाद के छः वर्ण अत्यन्त तरल होने से मन्दाक्रान्ता छन्द की शोभा बढ़ा रहे हैं।

करुण रस -

अपहाय सकलबान्धव-चिन्तामुद्वास्य गुरुकुलप्रणयम्।
हा तनय! विनयशालिन्! कथमिव परलोकपथिकोऽभूः।।[15]

अर्थ - हाय अतिविनीत पुत्र! तू सब बन्धुओं की चिन्ता को त्यागकर और गुरुकुल के प्रेम को भी बिसार कर कैसे परलोक का पथिक हो गया।

यहाँ मृत पुत्र आलम्बन, बन्धुवृत्तान्त उद्दीपन अश्रुपात्र अनुभाव, ग्लानि दीनता आदि व्यभिचारी व स्थायी भाव शोक है।

छन्दो-विमर्श - प्रस्तुत पद्य के प्रथम व तृतीय चरण में 3 4, द्वितीय चरण में 3 10 एवं चतुर्थ चरण में 3, 7 मात्राएँ होने से आर्या छन्द है। इसमें कुल 7, 9 मात्राएँ होती है।

शान्त रस -

मलयानिलकालकूटयो-रमणीकुन्तल-भोगिभोगयोः।
पचात्मभुवोनिरन्तरा मम जाता परमात्मनि स्थितिः।।[16]

Scanned with CamScanner

अर्थ – मलय पर्वत के पवन और विष में कामिनियों के केश-कलाप और सर्प की फण में एवं चाण्डाल तथा ब्रह्मा में तुल्य अर्थात् भेद-भाव रहित मेरी स्थिति परमात्मा में हो गई है।

यहाँ सम्पूर्ण संसार आलम्बन, वेदान्त श्रवण तपस्वी दर्शन उद्दीपन, विषयारुचि अनुभाव, हर्ष उन्माद स्मरण मति आदि व्यभिचारी भाव एवं स्थायीभाव निर्वेद है।

छन्दो-विमर्श – प्रस्तुत पद्य के विषम चरणों में 8 मात्रा के बाद रगण लघु और गुरु तथा सम चरणों में 10 मात्रा के बाद रगण लघु और गुरु होने से वैतालीय छन्द है। वैतालीय छन्द को वियोगिनी एवं सुन्दरी भी कहा जाता है। इसी पद्य में वियोगिनी छन्द भी हो सकता है। लेकिन वियोगिनी छन्द का विनियोग दुस्सह वियोग तथा करुण रस के सन्दर्भ में होना समीचीन है। प्रस्तुत पद्य में शान्तरस है अतः यहाँ वियोगिनी छन्द ना होकर वैतालीय छन्द ही समीचीन है।

पं. जगन्नाथ ने वैतालीय छन्द का प्रयोग यहाँ समुचित रूप में किया है।

रौद्र रस –

नवोच्छलितयौवन-स्फुरदखर्वगर्वज्वरे
मदीयगुरुकार्मुकं गलितसाध्वसंवृश्चति।
अयं पततु निर्दयं दलितदृप्तभूभृद्गल-
स्खलद्रुधिरघस्मरो मम परधो भैरवः।।[17]

अर्थ – नवीन उछलती हुई युवावस्था के कारण बढ़े हुये अत्यधिक अभिमानरूप ज्वर से युक्त किसी ने निर्दय होकर मेरे गुरु-शिवजी के धनुष को तोड़ डाला है। अच्छा, अब युद्ध में काटे गये गर्वीले भूपों के गले से चूते हुए शोणित को पीने वाला यह मेरा भयजर फरसा उसके ऊपर निर्दयता पूर्वक गिरे।

राम यहाँ आलम्बन, तदापराध उद्दीपन, कटुवचन अनुभाव, गर्व और उग्रता आदि व्यभिचारी एवं क्रोध स्थायी भाव है।

छन्दो-विमर्श – प्रस्तुत पद्य में जगण-सगण-जगण-सगण-यगण तथा अन्त में लघु गुरु तथा आठ और नौ पर यति होने से पृथ्वी छन्द है।

पृथ्वी छन्द के विषय में क्षेमेन्द्र लिखते हैं-

पृथ्वी साकारगम्भीरैः ओजः सर्जिभिरक्षरैः।
समासग्रन्थियुक्तापि याति प्रत्युत दीर्घताम्।।[19]

पं. जगन्नाथ ने बड़े ही सुरुचि-पूर्ण रूप से पृथ्वी छन्द का प्रयोग इस पद्य में किया है। प्रायः पृथ्वी छन्द समास नहीं होने पर सुन्दर लगता है लेकिन यहाँ ओजो गुण को बढ़ाने वाले अक्षरों के द्वारा समास की ग्रन्थि से युक्त होकर भी पृथ्वी छन्द शोभित हो रहा है।

क्षेमेन्द्र लिखते हैं कि आक्षेप के साथ क्रोध में तथा किसी को धिक्कार ने में यह छन्द उपयुक्त होता है।[20] यहाँ भी शिव धनु भंग से प्रकुपित परशुराम का क्रोधाधिक्य व्यक्त हो रहा है। इस दृष्टि से यहाँ पृथ्वी छन्द का प्रयोग सर्वथा [illegible] है।

Scanned with CamScanner

वीर रस –

दानवीर – कियदिदमधिकं मे यद् द्विजायार्थयित्रे
कवचमरमणीयं कुण्डले चार्पयामि।
अकरुणमवकृत्त्य द्राक् कृपाणेन निर्यद्-
बहलरुधिरधारं मौलिमावेदयामि।।[23]

अर्थ – मेरे लिये यह कौन सी-बड़ी बात है कि मैं याचक ब्राह्मण को साधारण कवच और कुण्डल अर्पण कर रहा हूँ। निर्दयता पूर्वक तलवार से तत्काल काट कर बहती हुई प्रगाढ़-रुधिर-धारा से युक्त अपने मस्तक को भी उनके आगे निवेदित करता हूँ।

यहाँ याचक आलम्बन, उसके द्वारा की गई प्रशंसा उद्दीपन, कवचादिदान अनुभाव, गर्व, स्मृति आदि संचारी एवं उत्साह स्थायीभाव है।

छन्दो-विमर्श – प्रस्तुत पद्य में दो नगण, एक मगण और अन्त में दो यगण एवं आठ व सात पर यति होने से **मालिनी छन्द** है।[24] मालिनी छन्द संस्कृत साहित्य में अनुष्टुप् के बाद सबसे अधिक प्रचलित तथा रमणीय छन्द है। कालिदास, भारवि भवभूति आदि ने इसे अपनी प्रतिभा का आश्रय प्रदान किया है तथा अपने काव्य में इसका प्रयोग कर इसे गौरव प्रदान किया है। क्षेमेन्द्र ने मालिनी के विषय में लिखा है कि मालिनी के द्वितीयार्ध दीर्घसमास से युक्त हो तो वह श्रेष्ठ समझी जाती है परन्तु यदि प्रथमार्ध समस्त हो तो वह मालिनी निम्न कोटि की समझी जाती है।

द्वितीयार्धे समस्ताभ्यां पादाभ्यां मालिनी वरा।
प्रथमार्धे समस्ताभ्यां पादाभ्यामवरा मता।।[25]

मालिनी छन्द की मनोहरता के विषय में क्षेमेन्द्र लिखते हैं–

अज्ञोऽप्यवलक्ष्यं मालिन्यां वीणायामिव विश्वरम्।
श्रुत्वैवोद्वेगमायाति वाचा वक्तुं न वेत्ति तम्।।[26]

अर्थात् जिस प्रकार मूर्ख मनुष्य भी वीणा से बुरे स्वर की पहिचान कर उद्वेग को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार से मूर्ख मनुष्य भी मालिनी छन्द को कानों से सुनकर के उसकी विस्वरता को पहिचान कर बैचेन हो जाता है। वाणी से नहीं कहता क्योंकि वह अक्षरज्ञान से रहित है।

पं. जगन्नाथ ने प्रस्तुत पद्य में मालिनी छन्द का प्रयोग समीचीन रूप में ही किया है। यहाँ कहीं भी विस्वरता लक्षित नहीं हो रही है।

दयावीर –

न कपोत? भवन्तमण्वपि, स्पृशतु श्येनसमुवं भयम्।
इदमद्य मया तृणीकृतं, भवदायु कुशलं कलेवरम्।।[25]

अर्थ – हे पारावत! बाज से उत्पन्न होने वाला भय थोड़ा भी तेरा स्पर्श न करे। आज मैंने तेरे प्राणों की रक्षा करने में समर्थ इस अपने शरीर को तृण बना दिया है।

Scanned with CamScanner

यहाँ कपोत आलम्बन, व्याकुलता उद्दीपन, स्वकलेवर अर्पण अनुभाव, धैर्य आदि संचारी भाव है।

छन्दो-विमर्श – प्रस्तुत पद्य में विषम चरणों में छः मात्रा के बाद रगण एक लघु और एक गुरु तथा सम चरणों में आठ मात्रा के बाद रगण एक लघु और एक गुरु होने से वैतालीय छन्द है।[26]

युद्धवीर –

रणे दीनान्, देवान्, दशवदन! विद्राव्य बहति
प्रभावप्रागल्भ्यं त्वयि तु मम कोऽयं परिकरः।
ललाटोद्यज्ज्वाला-कवलितजगज्जालविभवो
भवो मे कोदण्डच्युतविशिखवेगं कलयतु।।[27]

अर्थ – हे दशमुख रावण! पराक्रमहीन-दीन देवताओं को युद्ध में भेजकर महा-सामर्थ्यशाली बनने वाले तेरे विषय में तो तेरी तैयारी क्या हो सकती है? हाँ, जिनके ललाट से निकलती हुई ज्वालायें समग्र सृष्टि के वैभव को ग्रास कर लेती हैं वे देवाधिदेव महादेव मेरे धनुष से निकले हुए बाणों के वेग को सम्हालें।

यहाँ शिव आलम्बन, रणदर्शन उद्दीपन, रावणावज्ञा अनुभाव, गर्व संचारी भाव है।

छन्दो-विमर्श – प्रस्तुत पद्य में य, म, न, स, भ और एक लघु एक गुरु तथा छः तथा ग्यारह पर यति होने से शिखरिणी छन्द है।[28]

क्षेमेन्द्र ने शिखरिणी का वर्णन करते हुए लिखा है –

शिखरिण्याः समारोहात् सहजैवौजसः स्थितिः।
सैव लुप्तविसर्गान्तैः प्रयात्यत्ययात्यन्तमुन्नतिम्।।[29]

आचार्य मम्मट ने इस छन्द की वीर रस में उपयुक्त बतलाई है। पं. जगन्नाथ ने भी इस छन्द का प्रयोग वीर रस में समीचीन रूप से ही किया है।

धर्मवीर –

सपदि विलयमेतु राज्यलक्ष्मीरुपरि पतन्त्वथवा कृपाणधाराः।
अपहरतुतरां शिरः कृतान्तो मम तु मतिर्न मनागपैति धर्मात्।।[30]

अर्थ – चाहे राज्य लक्ष्मी तुरन्त नष्ट हो जाए अथवा खड्गों की धारायें मेरे ऊपर गिरें, या स्वयं यम मेरे शिर को काट ले पर मेरी बुद्धि तो धर्म से अणुमात्र भी विचलित नहीं होती। यहाँ धार्मिक विषय आलम्बन, धर्मरक्षा उद्दीपन, मस्तक कर्तन आदि का स्वीकार अनुभाव और धैर्य संचारी भाव है।

छन्दो-विमर्श – प्रस्तुत पद्य के विषमपाद में छः मात्राओं के बाद रगण, व यगण तथा समपाद में आठ मात्रा के बाद रगण व यगण होने से औपच्छन्दसिक छन्द है।

औपच्छन्दसिक छन्द का लक्षण इस प्रकार है–

पिंगलसूत्र के अनुसार –

गौपच्छन्दसकम्।[31]

Scanned with CamScanner

छन्दोमंजरी के अनुसार -

तत्रैवान्तेऽधिके गुरौस्या, दौपच्छन्दसिकं कवीन्द्रहृद्यम्।[32]

वृत्तरत्नाकर के अनुसार -

पर्यन्ते यौ तथैव शेषमौपच्छन्दसिकं सुधीभिरुक्तम्।[33]

विद्वान् लोग पुष्पिताग्रा को औपच्छन्दसिक कहते हैं।[34]

अद्भुत रस -

चराचरजगज्जाल-सदनं वदनं तव।

गलद्गगनगाम्भीर्यं वीक्ष्यास्मि हृतचेतना।।[35]

अर्थ – जो स्थावर और जंगम सम्पूर्ण संसार का निवास-स्थान है और जिसके सामने में गगन की भी गम्भीरता नष्ट हो जाती है उस तेरे मुख को देख कर मेरा चैतन्य लुप्त हो गया है।

यहाँ मुख आलम्बन, विश्वरूपदर्शन उद्दीपन, रोमांच अनुभाव, त्रास आदि संचारी भाव है।

छन्दो-विमर्श – प्रस्तुत पद्य के प्रत्येक चरण में पंचम अक्षर लघु और षष्ठ अक्षर गुरु तथा द्वितीय व चतुर्थ चरण में सप्तम अक्षर लघु एवं प्रथम एवं तृतीय चरण में सप्तम अक्षर गुरु होने से अनुष्टुप् छन्द है।

हास्य रस –

श्रीतातपादैर्विहिते निबन्धे, निरूपिता नूतनयुक्तिरेषा।

अंगं गवां पूर्वमहो पवित्रं कथं न वा सप्तभधर्मपत्न्याः।।[36]

अर्थ – श्रीमान् पिताजी से रचे गये निबन्ध में यह एक नवीन युक्ति दिख पड़ी कि जब गायों का पूर्व अंग पवित्र है तब गधे की धर्मपत्नी का वह अंग पवित्र क्यों नहीं माना जाए?

यहाँ तार्किक पुत्र आलम्बन, उसका कथन उद्दीपन, दाँत का निपोड़ना अनुभाव और उद्वेग आदि संचारी भाव है।

छन्दो-विमर्श – प्रस्तुत पद्य के प्रथम व तृतीय चरण में इन्द्रवज्रा द्वितीय व चतुर्थ चरण में उपेन्द्रवज्रा है। इनके लक्षण त, त, ज, गुरु, गुरु और ज, त, ज, गुरु, गुरु पूर्णतः घटित होने से उपजाति छन्द है।

इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के परस्पर मिलने से यह छन्द निर्मित होता है। उपजाति छन्द का लक्षण विद्वानों ने इस प्रकार किया है-

पिंगलाचार्या के अनुसार -

आद्यन्तावपुजातय।[37]

क्षेमेन्द्र के अनुसार -

पदानन्तरविन्यासयोगैर्बहुभिरेतयोः

वैचित्यजातिरुचिरा भवन्त्येवोपजातयः।।[38]

Scanned with CamScanner

केदारभट्ट के अनुसार –

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।[39]

सामान्यतः उपजाति छन्द में प्रथम चरण का प्रथम अक्षर लघु ही प्रयुक्त होना चाहिए। जिससे उपजाति छन्द का सौष्ठव बढ़ जाता है।

क्षेमेन्द्र उपजाति छन्द के विषय में लिखते हैं–

उपजातिविकल्पानां सिद्धो यद्यपि सरः।
तथापि प्रथमं कुर्यात्पूर्वपादाक्षरं लघु।।[40]

यहाँ प्रथम चरण का पहला अक्षर तो लघु नहीं है लेकिन द्वितीय चतुर्थ चरण लघु से युक्त होने के कारण उपजाति शोभित हो रहा है।

भयानक रस –

श्येनमम्बरतलादुपागतं, शुष्यदाननविलो विलोकयन्।
कम्पमानतनुराकुलेक्षणः स्पन्दितुं नहि शशाक लावकः।।[41]

अर्थ – विवश लावक ने जब गगनतल से झपटते हुए बाज को देखा तभी उसका मुख सूख गया, देह काँपने लगी, आँखे आकुल हो गई इस तरह वह हिल भी न सका।

यहाँ बाज आलम्बन, उसका बहुत वेग से झपटना उद्दीपन, मुख सूखना आदि अनुभाव और दैन्य आदि व्यभिचारी भाव है।

छन्दो-विमर्श – प्रस्तुत पद्य में र, न, र लघु और गुरु होने से रथोद्धता छन्द है। इसमें कुल ग्यारह वर्ण होते हैं।

रथोद्धता छन्द का लक्षण इस प्रकार है–

छन्दःशास्त्र के अनुसार –

रथोद्धता नौ रौ गः।[42]

सुवृत्ततिलकम् के अनुसार –

रनरैरन्वितं युक्तं लघुना गुरुणा तथा।
ख्यातं रथोद्धतानाम वृत्तमेकादशाक्षरम्।।[43]

वृत्तरत्नाकर के अनुसार –

रान्नराविह रथोद्धता लगौ।[44]

छन्दोमंजरी के अनुसार –

रान नरैर्नरलगै रथोद्धता।[45]

Scanned with CamScanner

क्षेमेन्द्र ने रथोद्वता के विषय में लिखा है-

विसर्गयुक्तैः पादान्तैः विराजति रथोद्धता।
कलापरिचयैर्याता लटभेव प्रगल्भताम्।।[46]
अविसर्गैस्तु पादान्तैर्निष्प्रभैव रथोद्धता।
अप्रार्थनाप्रणयिनी म्लानमानेव मानिनी।।[47]

प्रस्तुत पद्य में द्वितीय व चतुर्थ पाद के अन्त में विसर्गों का प्रयोग होने से रथोद्धता छन्द शोभायमान हो रहा है।

बीभत्स रस -

नखैर्विदारितान्त्राणां, शवानां पूयशोणितम्।
आननेष्वनुलिम्पन्ति, हृष्टा वेतालयोषितः।।[48]

अर्थ = हर्षयुक्त वेतालों की स्त्रियाँ नखों से मुरदों की अतड़ियों को फाड़कर मवाद और रुधिर को मुख पर लेप रही है।

यहाँ शव आलम्बन, आँतविदारण उद्दीपन, नेत्रनिमीलन अनुभाव आवेग आदि संचारी भाव है।

छन्दो-विमर्श - प्रस्तुत पद्य के प्रत्येक चरण में पंचम अक्षर लघु और षष्ठ अक्षर गुरु तथा द्वितीय व चतुर्थ चरण में सप्तम अक्षर लघु एवं प्रथम व तृतीय चरण में सप्तम् अक्षर गुरु होने से अनुष्टुप् छन्द है।

विरोध परिहार के उदाहरणों छन्दो-विमर्श -

स्थितिविरोध का परिहार -

कुण्डलीकृतकोदण्ड-दोर्दण्डस्य पुरस्तव।
मृगारातेरिव मृगाः परे नैवावतस्थिरे।।[49]

अर्थ - हे राजन्! युद्ध में जब आपने कान तक खींच कर कुण्डल के समान गोल किये हुये धनुष को हाथ में लिया, तब आपके आगे शत्रु उसी तरह नहीं ठहर सके, जिस तरह सिंह के आगे मृग नहीं ठहरते।

यहाँ नायक में 'वीर' और प्रतिनायक में 'भयानक' का वर्णन किया गया है जो भिन्न अधिकरण में स्थिति होने से दोषाधायक नहीं है।

छन्दो-विमर्श - प्रस्तुत पद्य में अनुष्टुप् छन्द है।

ज्ञान विरोध का परिहार -

सुरांगनाभिराश्लिष्टा व्योम्नि वीरा विमानगाः।
विलोकन्ते निजान् देहान्, फेरुनारीभिरावृतान्।।[50]

अर्थ - (युद्ध में मरे हुए) वीर जब देवांगनाओं से आलिंगित होकर विमानों में बैठे हुये, आकाशमार्ग से (स्वर्ग जाते रहते हैं) तब वे (रणभूमि में) निष्प्राण पड़े हुए अपने देहों को मादा-सियारों से घिरे हुए देखते हैं।

Scanned with CamScanner

यहाँ सुरांगना का आलम्बन किये हुये शृंगार और मृतशरीरों का आलम्बन किये हुये बीभत्स रस का वर्णन है जो आपाततः विरोधी है, परन्तु इसमें स्वर्गलाभ से अभिव्यंजित होने वाले वीर रस को मध्यस्थ करने से वह विरोध समाप्त हो जाता है।

छन्दो-विमर्श – प्रस्तुत पद्य में अनुष्टुप् छन्द है।

प्रत्युद्गता सविनयं सहसा सखीभिः
स्मेरैः स्मरस्य सचिवैः सरसावलोकैः।
मामद्य मंजुरचनैर्वचनैश्च बाले।
हा लेशतोऽपि न कथं वद सत्करोषि।।

अर्थ – बाले! बोलो, आज, तुम, सखियों के शीघ्र सामने में विनयपूर्वक उपस्थित होकर कामभाव को जगाने वाली, विकसित तथा सरस चितवनों से और सुन्दर रचना वाले वचनों से मेरा कुछ भी सत्कार क्यों नहीं कर रही हो?

यहाँ नायिका रूप आलम्बन में नायक की रति, अश्रुपातादि अनुभाव और आवेग, विषाद आदि संचारी भावों से अभिव्यक्त होते हैं और इन्हीं अश्रुपातादि से नायक का शोक भी व्यक्त होता है, परन्तु यहाँ शोक की प्रधानता है क्योंकि नायिका के मरण-ज्ञान वहीं प्रस्तुत है। रति उसका पोषक-अंग है। अतः इसी प्रकार यदि विरोधी रसों में परस्पर अंगांगि भाव हो जाए अथवा पोष्य-पोषक भाव हो जाए तो वह विरोध समाप्त हो जाता है।

छन्दो-विमर्श – प्रस्तुत पद्य में तगण, भगण, जगण जगण एवं गुरु होने से वसन्ततिलका छन्द है।[51]

नितान्तं यौवनोन्मत्ता गाढरक्ताः सदाहवे।
वसुन्धरां समालिंगय शेरते वीर! तेऽरयः।।[52]

अर्थ – हे वीर राजन्! यौवन से अत्यन्त उन्मत्त बने हुये और युद्ध में सर्वदा अंगों के क्षत-विक्षत हो जाने के कारण अत्यधिक रुधिर-प्रवाह से युक्त दूसरे पक्ष में अत्यन्त अनुरक्त आपके शत्रु लोग, मर कर गिर जाने से समर-भूमि को, दूसरे पक्ष में प्रणय से नायिका को सम्यक् रूप से आलिंगनबद्ध करके सो रहे हैं।

यहाँ 'यौवनोन्मत्त', 'गाढरक्त' इत्यादि शत्रु-मरण-प्रत्यायक विशेषणों से पहले करुण-रस की अभिव्यक्ति होती है पश्चात् उन्हीं विशेषणों से शृंगार रस की भी प्रतीति होती है। करुण और शृंगार में यहाँ विरोध इसलिए नहीं होता कि वे दोनों ही यहाँ एकविध विशेषणों के द्वारा अभिव्यक्त हो जाते हैं।

छन्दो-विमर्श – प्रस्तुत पद्य में अनुष्टुप् छन्द है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. रसगंगाधर, प्रथम आनन, पृ. सं. 38
2. षड् विषमेऽष्टौ समे कलास्ताश्च समे स्युर्नो निरन्तराः।
न समात्र पराश्रिता कला वैतालीयेऽन्ते रलौ गुरुः।।
वृत्तरत्नाकर, द्वितीय अध्याय – 2/12

Scanned with CamScanner

3. रसगंगाधर, प्रथम आनन, पृ. सं. 153
4. छन्दःशास्त्रम्, 7/21
5. सुवृत्ततिलकम्, 1/36
6. वृत्तरत्नाकर, 3/101
7. छन्दोमंजरी, द्वितीय स्तबक, पृ. सं. 111
8. सुवृत्ततिलकम्, 2/37
9. रसगंगाधर, प्रथम आनन, पृ. सं. 154
10. छन्दःशास्त्रम्, 7/19
11. सुवृत्ततिलकम्, 1/35
12. वृत्तरत्नाकर, 3/97
13. छन्दोमंजरी, द्वितीयस्तबक, पृ. सं. 96
14. सुवृत्ततिलकम्, 2/34
15. रसगंगाधर, प्रथम आनन, पृ. सं. 156
16. वही, पृ. सं. 156
17. रसगंगाधर, प्रथम आनन, पृ. सं. 160
18. जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः। वृत्तरत्नाकर, 3/94
19. सुवृत्ततिलकम्, 2/28
20. साक्षेपक्रोधधिक्कारे परं पृथ्वीभरक्षमा।। सुवृत्ततिलकम्, 3/21
21. रसगंगाधर, प्रथम आनन, पृ. सं. 164
22. न न म य य युतेयं मालिनी भोगिलोकैः। वृत्तरत्नाकर, 3/87
23. सुवृत्ततिलकम्, 2/23
24. सुवृत्ततिलकम्, 2/24
25. रसगंगाधर, प्रथम आनन, पृ. सं. 171
26. षड् विषमे ..... वृतरत्नाकर, 2/12
27. रसगंगाधर, प्रथम आनन, 173
28. रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी। वृत्तरत्नाकर, 3/93
29. सुवृत्ततिलकम्, 2/31
30. रसगंगाधर, प्रथम आनन, पृ. सं. 175

Scanned with CamScanner

31. छन्दः शास्त्रम्, 4/33
32. छन्दोमंजरी, पंचम स्तबक, पृ. सं. 160
33. वृत्तरत्नाकर, 2/13
34. पुष्पिताग्राभिधं केचिदौपच्छन्दसिकं तथा। वृत्तरत्नाकर, 4/11
35. रसगंगाधर, प्रथम आनन, पृ. सं. 180
36. रसगंगाधर, प्रथम आनन, पृ. सं. 184
37. छन्दःशास्त्रम्, 6/17
38. सुवृत्ततिलकम्, 1/20
39. वृत्तरत्नाकर, 3/60
40. सुवृत्ततिलकम्, 2/6
41. रसगंगाधर, प्रथम आनन, पृ. सं. 186
42. छन्दः शास्त्रम्, 6/22
43. सुवृत्ततिलकम्, 1/23
44. वृत्तरत्नाकर, 3/38
45. छन्दोमंजरी, द्वितीय स्तबक, पृ. सं. 41
46. सुवृत्ततिलकम्, 2/13
47. सुवृत्ततिलकम्, 2/14
48. रसगंगाधर, प्रथम आनन, पृ. सं.186
49. रसगंगाधर, प्रथम आनन, पृ. सं. 194
50. वही, पृ. सं. 195
51. उक्ता वसन्ततिलका तभजाजगौगः। वृत्तरत्नाकर, 3/79
52. रसगंगाधर, प्रथम आनन, पृ. सं. 204

श्रीसोमनाथ संस्कृत विश्वविद्यालय
राजेन्द्र भुवन रोड़, वेरावलल,
जिला गीर सोमनाथ, गुजरात 362265

Scanned with CamScanner